Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Double Blind Peer Reviewed)

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

आजादी के पूर्व एवं बाद के भारत में मुस्लिम सजातीय पहचान की राजनीति

डॉ० मंजूर अली

परिचय

भारतीय मुस्लिम समुदाय की आलोचनात्मक अनुसंधान से यह बात साबित होती है की सैद्धान्तिक इस्लाम और उसके व्यावहारिक अभिव्यक्ति में एक भारी अंतर है. जाति–प्रथा जो की भारतीय उपमहाद्वीप की विशेषता है उसने मुस्लिम समाज को भी प्रभावित किया है. इसके निशान शादी–व्याह, स्वच्छ जीविका वालों का सामाजिक अधिश्रेणी में ऊंचा स्थान, विभिन्य जातियों का जन्म निर्धारित व्यवसाय/कर्म के स्वरूप में मिलते है. यह सच्चाई सजातीय मुस्लिम समुदाय की अवधारणा के विपरीत स्थिति को उजागर करता है. मगर यह अचंभित करने वाली बात है की सिवाय कुछ शैक्षणिक अभ्यास के १९८० तक किसी भी राजनीतिक पार्टी ने इसे अपना मुद्दा नहीं बनाया. लिहाजा, यह लेख इस गंभीर मुद्दे पर राजनीतिक उदासीनता के सूक्ष्म कारकों को जानने का प्रयास है. दूसरे शब्दों में, यह लेख इस बात पर चर्चा करता है की क्यों १९८० तक राजनीतिक दलों ने मुस्लिम समुदाय में जाति–प्रथा को भुलाये रखा था. इसी सन्दर्भ में, यह लेख पारंपरिक अभिजात वर्ग और अजलाफ में नई अभिजात वर्ग के बीच सामाजिक एवं राजनीतिक वर्चस्व के लिए अंतर–समुदाय परिवाद पर भी चर्चा करता है.

"एकरूप पहचान" का निर्माणः इतिहास में

चर्चा की शुरुआत करने से पहले, इतिहास के उन चरणों को समझना होगा जहाँ मुस्लिम समुदाय की एकरूप पहचान का निर्माण होता है तथा ऐसी सोच को स्थापित करता है. एकरूपता के इतिहास को समझना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि वह सोच भारत की आजादी के बाद भी जन–मानस के ज्ञान पटल पर इंकित है और उनके राजनीतिक व्यवहार को निर्देशित करता है.

भारतीय उपमहाद्वीप में इस्लाम के दाखिल होने से पहली बार दो अलग धर्मों का आमना–सामना होता है. नए शासक अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए एवं अपने शासन को वैधता देने के लिए नव–परिवर्तित मुसलमानों के नई पहचान के लिए बेहद सचेत थे. स्वदेशी परिवर्तित मुसलमानों के अलग पहचान के लिए दिल्ली के सुल्तान ने विद्वानों की मदद ली. सूफी संतों ने भी नव–धर्मान्तरित मुसलमानों को रोजमर्रा की जिंदगी में गैर–मुसलमानों से जाहिर और सांस्कृतिक रूप से अलग किया। मगर, अपने अलग दृष्टिकोण की वजह से सूफी संतों ने एक सौहार्दपूर्ण माहौल बनाने में सफलता हाशिल की, जिससे दोनों धर्मों के लोग शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर

Assistant Professor, Giri Institute of Development Studies (GIDS) Lucknow-226024 (U.P.)

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

सके। लेकिन, ब्रितानिया हुकूमत के आने से यह सौहार्दपूर्ण संबंध ने एक दुखद मोड़ लिया। १८५७ में दोनों धर्मों के लोंगों ने बराबर की शिरकत की, लेकिन मुगल शासन होने के कारण अंग्रेजों का कहर मुसलमानों को झेलना पड़ा। सरकार के उच्चतम स्तर पर १८५७ की क्रांति का एकमात्र प्रेरित बल मुसलमानों को माना गया। १८५८ में सर जेम्स आउट्रम लिखते हैः

> ''इससे पहले की अवध को दमनकारी मुसलमानों से बचाते, उन्होंने विद्रोह को खड़ा किया। इससे पहले मुस्लिम कट्टरपंथियों यहाँ के भूमि को रौंदा, और हिंदुओं को हमारे खिलाफ यह कह कर भड़काया की हम भारत को जबरदस्ती ईसाई में परिवर्तित कर देंगे।''[i]

परिणामतः ब्रितानी हुकूमत ने मुसलमानों को शक के दायरे में रखने लगे और माना की यह समुदाय सरकार की खिलाफ षड्यंत्र रच सकते है। एच. बटलर के अनुसार ''ज्यादातर मुसलमान अपने दिल में उन यादों को संजोये हुए है जब उनके बाप–दादा की हुकूमत थी, और सही या गलत यह भी मानते है की अगर अंग्रेजी सरकार का क्षय हुआ तो उनके वो पुराने दिन लौट सकते है''[ii] हालाँकि, धार्मिक नेतृत्व के अंदर अखिल–भारत इस्लामिक लहर थोड़े समय के लिए थी[iii], मगर औपनिवेशिक शासक के अतिसंवेदनशील मन पर वह गहरी छाप छोड़ती है। औपनिवेशिक शासक यह मानना शुरू कर देते है की दक्षिण हिमालय के मुसलमान अपने नियत और मकसद में दुनिया के बाकि मुसलमानो की तरह ''एक'' है और मूर्ति–पूजने वालों के बीच अपने धर्म को पवित्र रखे हुए है। इन कारणों से मुसलमानों को सामाजिक रूप से एकजुट माना गया। "एक ऐसी एकजूटता जो वर्ग, रंग जाति, क्षेत्र से ऊपर है और समय पर अपने प्रतिनिधि निकायों के माध्यम से अधिकार के साथ बात करती है"[iv]।

"इस्लामिक एकात्मता एक सच्चाई है जिसे सामने अपना दिमाग लगाना बेकार है''[v]। बंगाल के राज्यपाल लगभग एक सदी के लिए अपरिवर्तित आधिकारिक राय रखते हुए ब्यान करते है की

> ''जैसे ही कोई भारत को देखने निकलता है उसे नृजातीय आडंबर के कई झांकी मिलती है। मगर, एक झांकी ऐसी है जो सबसे अलग दिखती है और ध्यान आकर्षित करती है। यह झांकी एक धर्म, संस्कृति और सभ्यता को प्रतिनिधित्व करता है जो हिंदूधर्म से बिलकुल अलग है''[vi]।

इस तरह हम देख सकते है कि औपनिवेशिक शासक के रूप में पाश्चात्य सभ्यता और इस्लाम के संपर्क में आने से सजातीय मुस्लिम समाज की भ्रान्ति सामान्य ज्ञान बन जाती है। फ्रांसिस रॉबिन्सन (१९९८) मानते है की ''सजातीय समुदाय होने की भावना को मुस्लिम देशों में पिछले एक सदी की विशेषता मानते है. वे कहते है की ज्यादा से ज्यादा मुस्लिम भावनात्मक रूप से दूर देशों के मुसलमानो को अपने करीब मानने लगे थे। भारत में यह भावना और भी तीव्र थी क्योंकि ब्रितानी

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

हुकूमत ने मुसलमानो से सत्ता लेकर उन्हें असुरक्षा के भवर ने धकेल दिया था.''[vii]

इसके अलावा, उस समय के मुस्लिम नेताओं ने भी इस भ्रान्ति को यह कह कर मान्यता दी की मुस्लिम समाज हिन्दू से हर मामले में अलग है। इसका श्रोत शाह वलीउल्लाह, शाह अब्दुल अजीज, जमालुद्दीन अफगानी जैसे विद्वानों के लेखनी थे जो दुनिया के सभी मुसलमानो को एक उम्मत के तौर पर पेश करती है। शाह वलीउल्लाह के अनुसार खिलाफत के स्थापना तार्किक है और मानव समाज के व्यावहारिक आवश्यकताएं के अनुकूल भी है। वली–उल्लाह ने भारत में बौद्धिक तौर पर कई नस्लों पर असर छोड़ा है। मोहम्मद इकबाल के विचारों में में तर्कसंगतता का स्थान वली–उल्लाह से आता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि, कैसे औपनिवेशिक सरकार ने ऐसे विचारों को बढ़ावा दिया और मुस्लिम बुद्धिजीवियों की मदद की ऐसे छवि को गढ़ने में जो वास्तविक और स्थायी मतभेद को नकारती है। अंग्रेजी सरकार ने उच्च वर्गीय मुसलमानों के अंदर तुर्की के लिए हमदर्दी को अपना हथियार बनाया। फारसी–अरबी पोशाक में इस्लाम जनसाधारण को टेढ़ी खीर मालूम पड़ती थी। इसलिए सांस्कृतिक मध्यस्थों ने इस्लाम को लोंगों तक पहुंचाने में समधर्मी और प्रतीकात्मकता को उपयोग में लाया[viii] ।

उस वक्त भी मुसलमानों के भीतर पंथ, क्षेत्र, जाति, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक के आधार पर विभीन्यता मौजूद थी। उदाहरण के लिए, शिया, शुन्नी, अफगानी पठान, देवबंदी, मोप्लाह मुस्लिम, इत्यादि। लेकिन, यह विभिन्नता न तो ठोस राजनीतिक फैसलों में और न ही संवैधानिक फरमान में कभी प्रयोग हुआ। मगर, पश्चिमी शासक की नजर में, यह तमाम अंतर नगण्य थे। और इस तरह यह मिथक की भारत के मुसलमानों एक सजातीय समुदाय हैं व्यापक रूप से परिचालित हुआ। वायसराय डफरिन के मुताबिक, ''अपने एकेश्वरवाद, कट्टरता, पशु बलि (कुरबानी), और सामाजिक समानता के कारण इस्लाम के मानने वाले 5 करोड़ आबादी वाले एक राष्ट्र है''[ix]। अली असगर इंजीनियर बताते है की ''ब्रिटिश ने ऐसी इतिहास लेखन को बढ़ावा दिया जो उसकी प्रजा को बाँट दे, जिससे वे आसानी उन पर हुकूमत कर सके। उन्होंने जान–बुझकर या नादानी में दो समुदायों के अंतर–विरोध को समाप्त करते हुए उन्हें सजातीय बना दिया।[x]

मुसलमानों के बारे में ऐसी राजनीतिक विचार ने सरकार द्वारा भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा और यह भविष्य में मुसलमानों से सम्बंधित राजनीतिक का बीजक भी बना। १८५७ के क्रांति के बाद मुसलमान की स्थिति बेहद खराब हुई। सरकार ने जानबूझ कर उन्हें लाभ के दायरे से बाहर रखने लगी। 'भारत की खोज' में नेहरू ने ब्रितानी सरकार के हिन्दुपरस्त और मुस्लिम विरोधी होने की बात का व्यान करते है [xi]। अन्य दो संभावित कारक जो मुस्लिम के पिछड़ेपन को स्पष्ट करते है, इस प्रकार हैः

१. ईसाई मिशनरियों इस्लाम में विश्वास को कमजोर करने की कोशिश ने सरकार को प्रभावित

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

किया,

२. पश्चिमी शिक्षा और आधुनिक विज्ञान की अस्वीकृति ने उन्हें पीछे धकेला।

इसके विपरीत, हिन्दू ने बदलते हुए हालात से समझौता किया और अपने को इसके अनुकूल ढाल लिया। "हिन्दू जो लंबे समय से अपने ऊपर विजय प्राप्त करने वालों के बोली, भाषा और तौर–तरीकों को अंगीकार कर लेने के आदि है, ब्रितानी हुकूमत वरदान थी, जबकि, मुस्लमान अपनी राज और संस्कृति का बचाव करते हुआ इनसे अलग खड़े थे"[xii]. परिणामतः, मुसलमान उभरते हुए हिंदू मध्यवर्ग, जिन्होंने नई परिस्थिति द्वारा दिए गए अवसर का लाभ उठाया, से पिछड़ गया। ऐसे संदर्भ ने मुसलमानो को अपने उत्थान के बारे में सोचनें पर मजबूर किया। इस वक्त सर सैय्यद अहमद खान राजनीतिक पटल पर मुसलमानो के समस्याओं पर सुझाव दिए और कहा की विज्ञान और अंग्रेजों से दोस्ती ही तारणहार होगी।

उनका मानना था कि ''मुसलमानों की प्रगति दीन से होगी और दीन की बुनियाद सांसारिक प्रगति में है''[xiii]। उनका डर था की हिन्दू जो बहुसंख्यक है वे अल्पसंख्यक समुदाय के हिस्से को प्रभावित करेंगे। उनसे मुकाबला करना है तो समुदाय को सामाजिक और शैक्षणिक तौर पर मजबूत होना होगा। यही समझदारी आगे चल कर पृथक निर्वाचन का कारण बना।

उधर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उदय और आन्दोलनों के वजह से परंपरागत मुस्लिम अभिजात वर्ग, जो अपना सबकुछ खो चुके थे, और औपनिवेशिक शासक में राजनीतिक करीबियां बढ़ी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को क्षीण करने के लिए, अंग्रेजी हुकूमत ने मुसलमानो का हिन्दू बहुसंख्यवाद से भय को अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करते हुए पृथक निर्वाचन की मांग को स्वीकृत दिया। पृथक निर्वाचन ने मुसलमानो के अंदर समजातीय होने के मिथक को स्थापित किया। '' पृथक निर्वाचन के मंजूरी की औपचारिक मुहर ने मुस्लिम राजनीतिक पहचान की अवधारणा स्थापित किया, जो निहायत ही विभाजनकारी और स्वाभाविक संघर्ष उन्मुख थी''[xiv]।

ऊपर हुए बहस से यह साफ जाहिर है की मुस्लिम सजातीय पहचान की वजह बाह्य और आंतरिक कारक, दोनों है। एक तरफ जहाँ मुस्लिम नेताओं ने समुदाय के समरूप एवं हिन्दू धर्म से विपरीत होने का प्रचार किया वहीँ अंग्रेजों ने अपने फायदे के लिए इस मिथक को बढ़ावा दिया। इस राजनीति ने ''दो राजनीतिक शिविरों का सृजन किया और लोंगों को अनिवार्य रूप से पक्षपाती बना कर एक दूसरे के खिलाफ संगठित भी किया''[xv]।

इस पूरी प्रक्रिया में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका और मुसलमानो के प्रति उनके रवैये को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। अचंभित बात यह है की, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अंग्रेजों द्वारा बनायीं गयी समजातीय मिथक को उन दिनों चुनौती नहीं दी। अंग्रेजों की तरह कांग्रेस ने भी मान लिया की सभी मुसलमानो की आर्थिक और सामाजिक जरूरत एक है, तथा ये हिन्दू समुदाय से विपरीत है। इसी तर्ज पर १९१६ की लखनऊ संधि पर समझौता हुआ था[xvi]। हालाँकि, नेहरू ने

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

कांग्रेस पार्टी के निचले स्तरों पर गरीब और पसमांदा मुसलमानो को जगह दे कर मुस्लिम लीग के सजातीय राजनीति को रोकने के प्रयास किया था। मगर, हिन्दू दक्षिण पंथी नेताओं की मौंजूदगी ने इस प्रयास को विफल बना दिया[xvii]। मोमिन कांफ्रेंस का उदय, उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष और मुस्लिम लीग के राजनितिक अभियान को उनकी चुनौती को यहाँ संदर्भित किया जा सकता है। हालाँकि, मोमिन कॉन्फ्रेंस उपनिवेशवाद से पीड़ित बुनकरों की स्वतंत्र आवाज बन कर उभरी थी, मगर १९४८ के पटना सत्र में यह तय हुआ की कॉग्रेस के पक्ष में कांफ्रेंस अपना राजनितिक महत्वकांक्षा को खत्म/कम कर देगी।

कांग्रेसी नेता जैसे मदन मोहन मालवीय, गोविंद बल्लभ पंत का दक्षिण पंथ की तरफ झुकाव इतिहास में दर्ज है। बहुत सारे निचले स्तर के नेता और कार्यकर्त्ता सांप्रदायिक तनाव को हवा देने में शामिल थे। उदाहरण के लिए, ''गोरखपुर के जिला कांग्रेस कमेटी के वरिष्ठ सदस्य ने हथियारों से लैस एक होली जुलूस की अगुवाई की थी''[xviii]। इस तरह, बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता ने भी मुस्लिम समजातीय मानसिकता को आगे बढ़ाया और दो समुदायों के बीच में एक कृत्रिम परिसीमा खडी कर दिया। इस सारी घटनायों के संचयी प्रभाव ने मुस्लिम लीग को आजाद पाकिस्तान की मांग पर एक पूर्ण आंदोलन में बदल दिया।

आजाद भारत में ''समजातीय'' छवि का नित्य संबंध

पाकिस्तान के गठन के बाद अभूतपूर्व पलायन ने यहाँ रुक जाने वाले मुसलमानो की सामाजिक और राजनीतिक हालत को बहुत ही कमजोर कर दिया[xix]। ज्यादातर पलायन परंपरागत शहरी केंद्र जैसे दिल्ली, पश्चमी उत्तर प्रदेश, दक्षिण बिहार, कलकत्ता, बम्बई, भोपाल, अहमदाबाद, हैदराबाद और मद्रास से हुआ था। पलायन में ज्यादातर शिक्षित, बुद्धिजीवी, सेवा वर्ग जैसे डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, लोग शामिल थे[xx]। कुशल और प्रशिक्षित मानव संसाधनों का शहरी पलायन का एक और मतलब था की गैर–पलायन मुस्लिम की मध्यम वर्ग का खत्म हो जाना। इस पलायन से सामाजिक निर्वात को जन्म दिया।

इस निर्वात ने मुसलमानों के जेहन में विभ्रान्ति पैदा किया और उन्हें ऐसे मुखर नेतृत्व से अलग किया जो उनके जायज मांगो को सरकार के सामने रख सके। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री को पत्र लिखते हुए नेहरू ने मुसलमानो के कुंठा के बारे में आगाह किया। उनके अपने शब्दों में ''भारत के मुसलमान को विभाजन और उसके परिणाम से एक जबरदस्त सदमा पहुंचा है, और यह हमारी जिम्मेदारी है उन्हें सांत्वना दे और बताये की उनका हित भारत में ही है''[xxi]।

नई परिस्थिति ने सवाल पैदा किया की, क्या दो भिन्न संस्कृति एक साथ रह सकती है या नहीं। भारतीय मुसलमान, जो अब अल्पसंख्यक की श्रेणी में है, के नजरिये से यह सवाल बेहद खास थी। वे अपने भविष्य को लेकर बेहद चिंतित थे।[xxii] हालाँकि, नव–निर्मित भारत ने खुद को धर्मनिरपेक्ष घोषित किया था, लेकिन मुसलमान कांग्रेस के पूर्व रवैये को भूले नहीं थे। मुसलमान खुद को नई

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

परिस्थिति, जो अविश्वास से भरा था, में ढालने का प्रयास करने लगे। इधर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू महासभा द्वारा पुरे समुदाय के ऊपर विभाजन का ठीकरा फोड़ दिया गया। ताज्जुब की बात तो यह थी की, दक्षिण पंथियों के साथ साथ कांग्रेस ने भी मुस्लिम और मुस्लिम लीग को विभाजन का जिम्मेदार बताया।

खुद मौलाना आजाद ने जामा मस्जिद से अपने ३ अक्टूबर १९४७ के खुत्बे में मुसलमानो से कहा ''. ..एक पल के लिए सोचिये। आपने क्या रुख अख्तियार किया। आप कहाँ पहुंचे और अभी कहाँ खड़े है। क्या आपका मन उदास नहीं होता है। क्या आप सदैव ही डर के माहौल में नहीं जीते है। यह डर आपने बनाये है और आपके कर्मो का नतीजा है। बहुत वक्त नहीं गुजरा है, जब मैंने कहा था कि दो राष्ट्र सिद्धांत सार्थक और सम्मानजनक जीवन के लिए घातक है। मैंने कहा था की जिस खम्भे का सहारा आप ले रहे है वो जल्द ही टूट जायेगा। इन सब बातों पर आपने अपने कान बंद कर लिए थे''[xxii] । सरदार पटेल जैसे नेता के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में राष्ट्रभक्ति की झलक दिखती थी। उन्होंने तर्क दिया की ''आखिरकार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग/सदस्य कोई चोर या डकैत नहीं है। वे देशभक्त हैं जो अपने देश से प्यार हैं''[xxiv] ।

पुरे मुस्लिम समुदाय पर विभाजन का आरोप यह दर्शाता है की औपनिवेशिक मिथक आजाद भारत की राजनीति एवं राजनेता में अमिट छवि की तरह पेवेस्त कर चुकी थी। शायद इसीलिए अलग–अलग मंच से जिन मुसलमानो ने आजादी की लड़ाई में शिरकत की थी उनको हाशिये पर रखा गया। इसके बदले में उनके सामने यह मांग राखी गयी की वे अपनी विचारधारा और मंच को छोड़ कर कांग्रेस के साथ मिलकर राष्ट्रनिर्माण के लिए काम करे। गाँधी ने मुसलमानो को सलाह दी की ''मुसलमानो कांग्रेस में शामिल होने के लिए राजी रहे लेकिन जब तक उन्हें खुली बांहों और बराबरी का हक न मिलने तबतक उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए...''[xxv] लेकिन, मौलाना आजाद का लहजा शख्त था, जब उन्होंने मुस्लिम नेताओं को मुस्लिम लीग और तमाम धार्मिक मंच को भंग करके कांग्रेस के साथ आने को कहा''। मौलाना ने यह स्पष्ट किया कि ''किसी मुस्लिम तंजीम का बने रहना या किसी भी समुदाय की संगठन का होना देश के हित में नहीं है"[xxvi] ।

तमाम इल्जामात ने मुस्लिम समुदाय को मानसिक रूप से प्रभावित किया और वह एक विश्वासरहित अंतर्मुखी समुदाय बनकर रह गया। कहीं न कहीं अपने ऊपर लगे आरोप उन्हें सही लगने लगे और वे कांग्रेस के तरफ रुख किये। १६–१८ अप्रैल १९४६ के लखनऊ सत्र में जमीयत–उल–हिन्द ने राजनीति में भाग न लेने का प्रस्ताव पारित करते हुए यह तय किया की वे अपनी सारी ऊर्जा गरीब मुसलमानो की खिदमत में लगाएंगे। उस सत्र में यह भी तय हुआ कि सभी जमीयत के लोग कांग्रेस में शामिल होंगे और कभी भी जमीयत के मंच से चुनाव नहीं लड़ेंगे। और इस तरह एक अनिवारक संगठन चलन में आया जो कांग्रेस पार्टी के लिए मुस्लिम वोट का इंतेजाम करता था। धर्मनिरपेक्ष का जामा ओढ़ने के लिए जेड एच लारी (मुस्लिम लीग,

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

यूपी), बेगम एजाज रसूल (मुस्लिम, यूपी), सैयद मुहम्मद सादुल्ला, श्री नजीरुद्दीन अहमद, श्री तजम्मुल हुसैन जैसे मुस्लिम नेतागण ने पृथक निर्वाचन के उन्मूलन के लिए तर्क दिया। इन सभी को यह समझ में आया कि जबतक पृथक निर्वाचन है तब तक हिंदुओं की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आएगा।

नेहरू के राष्ट्रीय एकीकरण कार्यावली के अन्तर्गत मुसलमानो ने धर्मनिरपेक्षता एवं समग्र संस्कृति के विचार को सम्मान दिया। जो कांग्रेस मुसलमानों से धर्मनिरपेक्षता एवं समग्र संस्कृति के प्रति प्रतिबद्धता की मांग कर रहे थे वे खुद इस प्रयास में असफल हो गए। विभाजन के दोषी ठहराए गए मुसलमानो के साथ व्यापक भेदभाव हो रहा था। कांग्रेस जो आंदोलन से एक पार्टी में तब्दील हो गयी थी समग्र संस्कृति के मूल्यों को सुरक्षित करने में असमर्थ थी। सरकारी नौकरियों में मुसलमान का प्रतिनिधित्व मिलना बड़ा ही कठिन था।

संसद और विधानसभा में भी उनका वही हाल था। जिन मूल्यों के तहत आजादी की लड़ाई लड़ी गयी उनको जमीनी हकीकत में कांग्रेस की असफलता के दो परिणाम हुए: मुसलमानो में असंतोष तथा राजनीतिक पटल पर हिंदूवादी/हिंदुत्व का उभार, जो नेहरू के मृत्यु के बाद देश में दंगों के कारण बने। १९६१ में ९२ दंगे हुए। लेकिन, १९६३ में जब हजरतबल दरगाह, श्रीनगर, से एक धार्मिक अवशेष लापता हो जाता है तब यह माहौल और भी खतरनाक हो जाता है। जनवरी १९६४ में कलकत्ता शहर से गांव में फैले दंगों में करीब १५०० मुसलमान मार जाता है। इसी तरह राउरकेला में करीब ५००० मुस्लिम दंगों के शिकार होते है[xxvii]। १९६५–६७ के बीच पॉल ब्रास ने तकरीबन ५१५ दंगों दर्ज किया जो राष्ट्रीय स्वमसेवक संघ के नेतृत्व में किये गए थे। नेहरू के अनुसार, ऐसा मालूम होता है की कांग्रेस कार्यकर्तायों ने जमीनी स्तर पर सांप्रदायिक उन्माद, जो जबलपुर और मध्य प्रदेश के और शहरों को अपनी जद में ले रहा था, को रोकने का प्रयास नहीं किया।

लेकिन,क्या नेहरू द्वारा स्वयं इस सांप्रदायिक राजनीति पर अंकुश लगाने के लिए अधिकतम प्रयास किया गया था? जब प्रथम राष्ट्रपति और कांग्रेस शासित राज्यों के मुख्यमंत्री हिंदूवादी संगठनों के असर में आ रहे थे तो नेहरू का प्रयास काफी नहीं था। उनके विचार तो नेक थे, मगर प्रशासनिक प्रयास नदारद थे[xxviii]। यहां पर राष्ट्रीय स्वमसेवक संघ के हिंदूवादी/ब्राह्मणवादी राजनीती को उजागर करना जरुरी है. संघ के लोग कांग्रेस के अंदर और बाहर दोनों जगह मौजूद थे। संघ के हिन्दुराष्ट्र के सपने में मुस्लिम की हमेशा ही नकारात्मक छवि रही है। संघ ने अपने मकसद के लिए ''दो राष्ट्र सिद्धांत'' को प्रसारित करता रहा जिससे दो समुदायों के बीच में वैमनस्ता बढ़ती रही। फलस्वरूप, देश में बड़े पैमाने पर दंगे होते रहे। यह दंगे या संघ की करवाईओं ने मुस्लिम सजातीय राजनीती को आजाद भारत में गहरा किया।

डेविड लुडेन (१९९६) में अपनी किताब Contesting the Nation में लिखते है की ''विश्व हिन्दू

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

परिषद् ने हमेशा ही धार्मिक macrocommunities जैसे इस्लाम और हिन्दू धर्म को सजातीय रूप में पेश किया है। वंश को धर्म से जोड़ते हुए, परिषद् मौजूदा मुसलमानो को आतताइयों का वंसज के रूप में प्रचारित करता है...'' दिब्येश आनंद (२०११) ने अपनी किताब ''Hindu nationalism in India and Politics of Fear'' में लिखते है की ''हिन्दू राष्ट्रवाद अलग–अलग तरीकों से दुष्प्रचार करता है की सब मुस्लमान ''हिन्दू–भारत'' के खिलाफ युद्ध छेड़ रखे है. और इस तरह से, बेहद विविध मुस्लिम समाज को उसके फौरी ''मुस्लिम'' पहचान से जोड़ दिया जाता है...प. १५)''

नेहरू के बाद चुनावी मजबूरी में कांग्रेस ने विभाजनकारी रणनीति अपनाये। इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली खबरदार करते हुए कहता है की ''भारतीय एकता की छवि केवल लफ्फाजी और तामझाम से नहीं होगा, जमीनी स्तर में भी ठोस होना होगा''[xxix] । इन परिस्थितियों में मुस्लिम समुदाय के भीतर निष्क्रिय पड़े प्रतिक्रियावादी ताकतों को मौका देता है और वे समजातीय राजनीति के शुरू करते है।[xxx] और इस तरह,एक गैर–धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक राजनीति के युग का आरंम्भ होता है, जो मुस्लिम समुदाय के विकास के मुद्दों को पीछे धकेल देता है।

यह प्रतिक्रिया वादी संगठन अल्पसंख्यकवाद की राजनीति जिसमे उर्दू, निजी कानूनों, मुस्लिम विश्वविद्यालय वगैरह मुद्दों विशिष्ट हो जाते है। ये वो सब मुद्दें थे जो मुसलमानो में समानता की भावना पैदा करते है। कांग्रेस की समझौतापरस्त धर्मनिरपेक्षता की राजनीति, हिन्दू प्रतिक्रियावादी का उदय और इस बीच अल्पसंख्यकवाद के गिने–चुने मुद्दों ने आर्थिक विकास को कभी मुद्दा नहीं बनने दिया। भावनात्मक मुद्दों को सामने रख कर उस वक्त के मुस्लिम नेताओं ने राजनितिक पार्टियों से सौदेबाजी की। यहाँ पर धर्मनिरपेक्ष पार्टियों के 'धर्मनिरपेक्ष' मुस्लिम नेताओं के क्रियाकलापों के बारें में जिक्र जरूरी है, क्योंकि समाज का लोकतंत्रीकरण के देरी में इनका बहुत योगदान है।

आजादी के बाद भी मुस्लिम नेताओं के सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में बदलाव नहीं आये। मुस्लिम राजनीति में शुरुआत से ही उच्च्य वर्ग और जाति का दबदबा रहा है। थिओडोर प. राइट के एक सर्वे के मुताबिक ''५८ राज्य सभा सदस्यों में केवल ६ सदस्य ऐसे थे जिन्होंने अपने निचले वर्ग से आया हुआ बताया...''[xxxi] . ये नेतागण अपने पार्टी की पैरोकारी में ही लगे रहे जिससे इनका स्वार्थ सधता रहे और पार्टी का भी और बदले में ऐसे मुद्दों को न छेड़ा जाय जो आधिकारिक मिथक को तोड़ता प्रतीत हो। इसलिए जाति प्रथा कभी भी मुद्दा न बन सका, क्योंकि इसके उठने से सरकार को अलग व्यवस्था करनी पड़ती पसमांदा और दलित मुसलमानो के लिए। इन मुद्दों को यह कह कर टाल दिया जाता की इस्लाम में जात–पात नहीं है। अभिजात मुस्लिम वर्ग के लिए भी यह फायदा का सौदा था। पूरा समुदाय विकास के आभाव वाले स्थिति में मिलने वाले मामूली संसाधन का बॅटवारा नहीं करना पड़ेगा। इनके लिए पूरे समाज एक ही तरह की

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

समस्यओं से रूबरू है।[xxxii]

उदाहरण के लिए, ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिस–ए–मुशावरत अपने उद्देश्य में जिक्र करते है की ''यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए की सभी मुसलमान इस्लाम के उच्च आदर्शों पर चले और खुद को देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति से अलग–थलग न रखे''। उदाहरण के लिए, ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिस–ए–मुशावरत अपने उद्देश्य में जिक्र करते है की ''यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए की सभी मुसलमान इस्लाम के उच्च आदर्शों पर चले और खुद को देश की सामाजिक, आर्तिक और राजनितिक प्रगति से अलग–थलग न रखे''[xxxiii] । यह बड़ा ही नेक ख्याल है। मगर, यह बड़े ही दुःख की बात है की जो संगठन इस्लाम के आदर्शों की बात करता है वह कभी भी मुसलमानो के अंदर जाति–प्रथा को चुनौती नहीं देता है। आखिर क्यों? जो यह नहीं कहते थकते है की मुस्लिम समुदाय की पसमांदगी देश के खराब स्वास्थ्य की निशानी है, उन्हें यह नहीं समझ में आया की जाति प्रथा समुदाय के बुरे स्वास्थ्य का प्रतीक।

अपने आप में कांग्रेस उच्च वर्ग और जाति के नियंत्रण में थी, जो चुनाव के दौरान सांप्रदायिक, जातीय, और क्षेत्रीय नेटवर्क को सँभालने में तथा गुटों और ताकतवर व्यक्ति को संरक्षण के प्रसार निपुण हो चुके थे। बचे हुए सम्पत्तिवानों को अपने में शामिल करके कांग्रेस ने एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी की भ्रामिकता को तैयार किया। नेहरू युग के दौरान ऐसे मुस्लिम नेताओं ने समुदाय के नेता के रूप में नहीं बल्कि नए राजनीतिक अभिजात वर्ग के सदस्यों के रूप में खुद के लिए एक नई भूमिका तय किया। पृथक निर्वाचन के खात्मे के बाद इन नेताओं को और स्वमं घोषित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को अल्पसंख्यकों को नजरअंदाज करना आसान हो गया। सत्ता भोग करते हुए वे यह भूल गए की उस वक्त भी सांप्रदायिक विचार राजनीतिक जीवन को प्रभावित कर रहे थे। सरकार के द्वारा सह–शामिल किये जाने के बाद मुस्लिम रहनुमाओं का समाज के बड़े तबके से विच्छेद हो गया।

सांप्रदायिक कहलाने के डर से राजनीतिक अभिजातों ने समाज से जुड़े खास मुद्दों को दरकिनार कर दिया। खास कर पहले तीन आम चुनावों में, ऐसे मुसलमानो का नामांकन किया गया या कोई जिम्मेदारी दी गयी जो विनर्म थे और समुदाय के सवालों पर खामोशी अख्तियार करते थे, वरना अगले चुनाव में उन्हें कम सुरक्षित सीटों पर भेज दिया जाता था (राइट १९६६:१५०)। किसी भी राजनेताओं या पार्टी द्वारा जाति–प्रथा या असहज सवाल को नग्न करना एक राजनितिक सोच थी। एक बार जब परंपरागत ताकतों ने समुदाय की राजनीति को संभाला, तब कांग्रेस उन्हें चुनौती देने के बजाय उनसे समझौता कर लिया। और बदले में इन्हें कुछ सरकारी ओहदें मिल जाते थे। सरकार इन्हीं प्रतिनिधियों के मार्फत यह कहलाती की इस्लाम में कोई जाति नहीं है। लिहाजा, सभी मुसलमान एक है और उनकी समस्या एक है। इसमें इनको हिन्दू कट्टरपंथी का साथ मिलता। नतीजन, महिलाओं का अधिकार, अजलाफ और अरजाल मुसलमानो के अधिकार,

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

विकास, रोजगार, इत्यादि सब दबे रह गए।

वी. पी. सिहँ ने जब मंडल कमीशन के सिफारिशों को लागु करते हुए मुसलमानो के बहुत से जाति को अन्य पिछड़ी जाति में शामिल किया तब यह सूरतेहाल बदलना शुरू हुआ। वैसे तो अरजाल और अजलाफ को एक सामाजिक इकाई मानना भूल है, मगर इस वर्गीकरण ने मुसलमानो के भीतर बहुत दिन से रुके हुए लोकतंत्रीकरण को एक नई ऊर्जा प्रदान किया। एक बार जब सुप्रीम कोर्ट ने मंडल सिफारिश के फैसले को बरकरार रखा तब मध्यम और निचले जातियों में अपने सामाजिक और राजनीतिक जरूरतों को लेकर चेतना जाएगी। और इस चेतना ने सबसे पहले अशराफ मुसलमानो की एकछत्र अधिकार को चुनौती देनी शुरू की। पहली बार भारत के सामने यह उजागर हुआ की मुस्लिम राजनीति का पूरा रुख अशरफ मुसलमानो के हितों को साधती है। शायद इसलिए कुछ सामाजिक और राजनीतिक विद्वानों का मानना है की एक तरफ जहाँ जाति प्रथा ने शोषण का काम किया है वही लोकतंत्र में पिछड़ों की उभरती हुआ नवचेतना ने उसे मुक्ति का साधन भी बना दिया।

मंडल के बाद यह साबित हुआ कि प्रगतिशील न दिखने वाली जाति आधारित राजनीति का लोकतंत्र में अपने सकारात्मक पहलु हो सकते है। यह गरीब और दबे–कुचलों को आवाज दे सकती है। यह प्रक्रिया हिम्मत देती है की दलित और पिछड़े यह कह सके की ''जिसकी जितनी संख्या भारी, उतनी उसकी भागेदारी''। देश के संशाधनो पर ऊँची जाति के कब्जे को नकारती है और मांग करती है की उस पर हमारा भी अधिकार है और सरकार हमें दे। ''हम इसे लेकर रहेंगे''। मुस्लिम समाज के अभिजात वर्ग ने बहुत दिनों तक सरकार से कौम के नाम पर मुनाफा कमाया। जिसका नतीजा था की वे तमाम मुस्लिम संगठनों के शीर्ष पर बैठें हुए थे। और अब उनके पूरे समाज के प्रतिनिधित्व होने की हैसियत पर सवाल उठने लगे।

नई राजनीतिक समीकरण के पिछले दो दशकों के प्रयासों ने अशराफ के वर्चस्व को प्रतियोगिता दी। शब्बीर अहमद अंसारी के नेतृत्व वाली ऑल इंडिया मुस्लिम ओबीसी ऑर्गेनाइजेशन, एजाज अली के नेतृत्व में ऑल इंडिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा, पसमांदा मुस्लिम महाज जैसी संगठनों ने जुझारू संघर्ष किया। इन्होंने ने सरकार और अशराफ मुस्लिम के ताने–बाने के जड़ पर वार किया और पूरे समाज के नाम पर सिर्फ इनको मिल रही सुविधाओं का विरोध किया।

निष्कर्ष

सभी मुख्यधारा के राजनीतिक दलों ने मुसलमानों को सामूहिक अखंड समूह वाली मिथक छवि में बाँधने की कोशिश की। देश में प्रतिस्पर्धी राजनीति की मजबूरी ने सभी राजनीतिक साधकों ऐसा करने पर बाध्य किया। शायद, दूसरा मिथक की मुस्लिम सामूहिक रूप से एक पार्टी को वोट देतें है पहले मिथक का परिणाम है। ऐसे मिथक क्यों है का जवाब इस लेख में ढूंढने की कोशिश की गयी है। जवाब, राज्य और उसकी संस्थाओं के अलोकतांत्रिक चरित्र में ही छुपा है, जो उच्य वर्ग

और जाति के लोंगों द्वारा नियंत्रित। अपने स्वार्थ को पूरे समुदाय का और फिर देश का हित बताकर प्रस्तुत करना और उसे सामान्य ज्ञान में इंकित कर देना इनका हुनर है। अब तक भारत में लोकतंत्र उन्हीं अभिजात्य के स्वार्थों को पोषित कर रहा था। दलितों, आदिवासियों और बाद में अन्य पिछड़ी जातियों के आरक्षण ने उसमे थोड़ी खलल डाली है। सचमुच में यह एक लोकतंत्रीकरण की ओर महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन यह लड़ाई का आगाज है, अंजाम नहीं। अंजाम तक पहुँचने के लिए इन आन्दोलनों को अपने भीतर की प्रक्रिया और मुद्दों को और जनवादी बनाने की जरूरत है।

---

[i] काए और मलसों, भारतीय विद्रोह, वॉल्यूम का इतिहास। द्वितीय, लंदन में १८८८, प.२७ ।

[ii] जॉन कमिंग (संपादित), आधुनिक भारत मेंः एक सहकारी सर्वेक्षण में हरकोर्ट बटलर की अध्याय 'देश, पीपुल्स, भाषा और क्रीड्स' , दिल्ली, १६३२, पृष्ट १५।

[iii] मुहम्मद यूसुफ अब्बासी, 'दक्षिण एशिया में मुस्लिम राजनीति और नेतृत्व : १८७६–१८६२', इस्लामाबाद, १६८१, प.४८

[iv] चूंकि नेतृत्व कोई विरासत की बात नहीं होती है, बल्कि यह विद्वानता एवं सेवा की परंपराओं की एक ऊर्जावान निरंतरता है, शाह वली–उल्लाह की पुनरुत्थानवादी आंदोलन को एक ऐसी गतिशीलता और लोकप्रिय समर्थन हासिल हुई जिसे उप–महाद्वीप में शायद ही कभी किसी भी अन्य मुस्लिम धार्मिक आंदोलन से बराबरी की जा सकती है।

[v] मुशीरूल हसन, इस्लाम उपमहाद्वीप मेंः मुसलमान एक मिश्रित समाज में, नई दिल्ली, २००२, प. ४१

[vi] विस्तार के लिए देखें टी.वी.होल्डर कोस, पीपुल्स, और भारत की समस्याएं, लंदन, १६११, प.१२७ ।

[vii] फ्रांसिस रॉबिन्सन, ''ब्रिटिश इम्पायर एंड मुस्लिम आइडेंटिटी इन साउथ एशिया'', ट्रांसक्शन्स ऑफ दी रॉयल हिस्टोरिकल सोसइटी, वॉल्यूम ८, १६६८.

[viii] रोनाल्डशे, भारतः एक विहंगमदृश्य, प. २१४।

[ix] असीम राय, बंगाल में इस्लामी सिन्क्रेटिस्टिक परंपरा, प.२४६।

[x] अ. अ. इंजीनियर, ''इस्लाम एंड मुस्लिम इन इंडियाः प्रॉब्लम ऑफ आइडेंटिटी एंड एक्सिस्टेंस'', सेक्युलर पर्सपेक्टिव, दिसंबर १६–३१, २००१.

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

[xi] नवम्बर के 1988 के डफरिन के मिनट जो हार्डी के ब्रिटिश भारत के मुसलमानों में उद्धृत है।

[xii] जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, कलकत्ता, १९४६, प.४०७।

[xiii] देखें मोहम्मद यूसुफ अब्बासी, 'दक्षिण एशिया में मुस्लिम राजनीति और नेतृत्व : १८७६–१८९२', इस्लामाबाद, १९८१, पृष्ठ .१३।

[xiv] पूर्वोक्त, मोहम्मद यूसुफ अब्बासी

[xv] रॉबिन्सन (१९७४)

[xvi] मुशीरूल हसन, प.४४

[xvii] A- A- Engineer, सांप्रदायिक ''दंगा के बाद स्वतंत्र भारत'' में जोया हसन, 'सांप्रदायिकता और भारत में सांप्रदायिक हिंसा', १९९५ , पृष्ठ .७०

[xviii] मुशीरूल हसन, ''राष्ट्रवाद और भारत 1916–28 में सांप्रदायिक राजनीति'', मनोहर, नई दिल्ली, 1979

[xix] कांग्रेस जन संपर्क अभियान के माध्यम से मुस्लिम लीग के अविभाजित भारत के समग्र मुस्लिम का प्रतिनिधित्व के दावे को बेअसर करने की कोशिश की थी। उसका मुख्य लक्ष्य निचली जाति/वर्ग के मुसलमान थे जो ऊंची जाति/वर्ग (अशरफ) के प्रभुत्व वाली मुस्लिम लीग के खिलाफ थे। मुशीरूल हसन, ''मुस्लिम जन संपर्क अभियान में भारत के विभाजन में: प्रक्रिया, रणनीति और जुटाना'', मुशीरूल हसन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995 द्वारा संपादित।

[xx] १९४८ में २३.४ लाख योग मुसलमानों के प्रवास, विशेषकर शहरी प्रवास में, भारत में शहरी मुसलमानों की संख्या कम करीब एक तिहाई रह गयी थी।

[xxi] १९५१ की जनगणना के अनुसार इन क्षेत्रों और कस्बों में मुस्लिम आबादी में गिरावट दर्ज की गई है

[xxii] १९५१ के पाकिस्तान में हुए खंड की जनगणना में इस बात की पुष्टि होती है, (पृष्ट .१९ पर तालिका देखें)।

[xxiii] ए.जी.नूरानी , ''भारत के मुस्लिमः एक वृत्तचित्र रिकॉर्ड'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २००३ , पृष्ट १०८

[xxiv] कूर्ग से आये प्रतिनिधिमंडल के नेता द्वारा जुलाई १९४७ को इसके अलावा अन्य सवाल भी उठाया गया था। विस्तार के लिए, जिन्ना के कागजात, पहली श्रृंखला, तृतीय खंड, देखें, कायदे आजम पत्रों परियोजना, कैबिनेट डिवीजन, पाकिस्तान, कराची में सरकार, ओयूपी, १९९८, पृ।

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

६६४–७ द्वारा वितरित।

[xxv]ए.जी.नूरानी , ''भारत के मुस्लिमः एक वृत्तचित्र रिकॉर्ड'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २००३ , पृष्ट ५२

[xxvi]पृष्ट ६६

[xxvii]पृष्ट ६१

[xxviii]पृष्ट ६४

[xxix] मुशीरूल हसन, इस्लाम उपमहाद्वीप मेंः मुसलमान एक मिश्रित समाज में, नई दिल्ली, २००२

[xxx]मुशीरूल हसन, इस्लाम उपमहाद्वीप मेंः मुसलमान एक मिश्रित समाज में, नई दिल्ली, २००२, पृष्ट ३७५

[xxxi]मुशीरूल हसन, इस्लाम उपमहाद्वीप मेंः मुसलमान एक मिश्रित समाज में, नई दिल्ली, २००२, पृष्ट ३७५

[xxxii]थिओडोर P-Wright (जूनियर), 'मुस्लिम विधानमंडल भारत मेंः एक अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग की प्रोफाइल', ''एशियन स्टडीज'', अवस. 23 , नंबर 2 , थ्मइ.1964.

[xxxiii]पूर्वोक्त, पृष्ठ २५७

संदर्भ

अब्बासी, मोहम्मद। ''मुस्लिम राजनीति और दक्षिण एशिया १८७६ –१८६२, इस्लामी इतिहास, संस्कृति संस्थान, और सभ्यता, इस्लामाबाद, 1981 में नेतृत्व।

अहमद, इम्तियाज। भारत में मुस्लिम सामाजिक संरचना में अशराफ– अजलाफ विरोधाभास, भारतीय आर्थिक और सामाजिक इतिहास, वॉल्यूम तृतीय, नंबर ३, १६६६।

आलम, अनवर। भारतीय मुसलमानों के लोकतंत्रीकरणः कुछ विचार ', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक (EPW), नवंबर.१५, २००३, पृष्ट .४८८१।

अशरफ, के.एम. ''जीवन और हिंदुस्तान के लोगों की स्थिति'', जीवन प्रकाशन, दिल्ली, १६५६।

मुशीरुल हसन, ''भारत राष्ट्रवाद और सांप्रदायिक राजनीति, १६१६–१६२८'', मनोहर, नई दिल्ली, १६७६।

हसन मुशीरूल। ''उपमहाद्वीप में इस्लाम'', मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२।

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

काए और Malleson, ''भारतीय विद्रोह का इतिहास'', वॉल्यूम I द्वितीय, लंदन में १८८८.

नेहरू, जवाहरलाल I डिस्कवरी ऑफ इंडिया, कलकत्ता, १९४६.

ए.जी.नूरानी, ''भारत के मुस्लिमः एक वृत्तचित्र रिकॉर्ड'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २००३.

थिओडोर P-Wright (जूनियर), 'मुस्लिम विधानमंडल भारत मेंः एक अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग की प्रोफाइल', ''एशियन स्टडीज'', vol- 23, नंबर 2 , Feb-1964.